रस-सिद्धान्त

संस्कृत काव्य-शास्त्र के इतिहास में रस आदि से अन्त तक किसी न किसी रूप में निरूपित होता रहा है। आचार्य भरत ने रस-विषयक प्रायः सभी सामग्री साक्षात् रूप से प्रस्तुत की थी। उनके उपरांत भामह, दण्डी, उद्भट, वामन, आनन्दवर्धन एवं कुन्तक ने भी रस को समुचित स्थान दिया।

'रस' शब्द भारतीय संस्कृति और साहित्य के चरम विकास से सम्बन्धित है। भारतीय जीवन के विभिन्न-क्षेत्रों में 'रस' शब्द का प्रयोग सर्वोत्कृष्ट तत्व के लिए होता है। खाद्य पदार्थों और फलों के क्षेत्र में रस मधुरतम तरल पदार्थ का द्योतक है। संगीत के क्षेत्र में कर्णेन्द्रिय द्वारा प्राप्त 'आनंद' का नाम 'रस' है। चिकित्सा के क्षेत्र में परमात्मा को ही रस या रस को ही परमात्मा घोषित किया गया है - "रसो वै सः" अर्थात् रस ही परमात्मा है। इसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी काव्य के आस्वादन से प्राप्त आनंदानुभूति को ही रस की संज्ञा दी गई है। अस्तु 'काव्यानन्द ही रस है।'

रस-सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य भरत-मुनी माने जाते हैं। उन्होंने अपने नाट्य शास्त्र में रस के विभिन्न अवयवों का विवेचन किया है। भरत का समय अनुमानतः ईसा की प्रथम शताब्दी माना जाता है। इसके पूर्व भी रस-सिद्धान्त के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है, परन्तु ग्रन्थों के अनुपलब्ध होने के कारण भरत को ही इस सिद्धान्त का आदि-आचार्य माना जाता है। भरतमुनी के कार्य को अनेक परवर्ती आचार्यों - भट्ट-लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, अभिनवगुप्त, भोजराज, विश्वनाथ, जगन्नाथ आदि ने आगे बढ़ाया। आगे चलकर हिन्दी के कवियों और आचार्यों ने भी रस-सिद्धान्त का महत्व स्वीकार किया है। आधुनिक युग में आचार्य रामचन्द्र-शुक्ल और डा०-नगेन्द्र ने रस सिद्धान्त की नई व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। वस्तुतः लगभग बीस शताब्दियों से भारत में रस-सिद्धान्त की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रूप से रही है। यद्यपि रस के विरोध में अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि आचार्यों ने नये-नये सम्प्रदायों की स्थापना करने का प्रयास किया, किन्तु उन्हें सफलता न मिली और अन्त में उन्हें भी किसी न किसी रूप में रस का महत्व-स्वीकार करना पड़ा।

रस - निष्पत्ति

काव्य के अध्ययन से पाठक को रस या आनंद की अनुभूति होती है। आचार्य भरतमुनी का मानना है - "विभावानुभाव-व्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पत्ति :" अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। परवर्ती आचार्यों ने इस श्लोक की व्याख्या अपने-अपने दृष्टि से करते हुए अनेक मत स्थापित किये हैं। इन आचार्यों को दो वर्गों में बांटा गया है :-

1) प्राचीन आचार्य :- भट्ट-लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक और अभिनव गुप्त
2) अर्वाचीन आचार्य :- रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दर दास, नगेन्द्र, गुलाब

इनके मन्तव्यों पर यहाँ क्रमशः प्रकाश डाला जाता है :-

1) **भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद :-** भट्टलोल्लट ने भरतमुनी द्वारा प्रयुक्त दो शब्दों - 'संयोग' और 'निष्पत्ति' - की व्याख्या मौलिक रूप से करते हुए बताया कि 'संयोग' का तात्पर्य यहाँ सम्बन्ध या मेल है तथा निष्पत्ति का अर्थ 'उत्पत्ति' है। उनके मतानुसार विभावों से रस की उत्पत्ति होती है, संचारियों से पुष्टि तथा अनुभावों से अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार से रस-सामग्री का रस से तीन प्रकार का सम्बन्ध हुआ : रस और विभावों में उत्पाद्य-उत्पादक, रस और संचारियों में पोष्यपोषक तथा रस और अनुभावों में गम्य-गमक सम्बन्ध होता है। इस प्रक्रिया को समझने के हम दही की लस्सी का उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं। दही, पानी, बर्फ और चीनी आदि को मिलाकर, मथकर लस्सी तैयार की जाती है। दही मूल उत्पादन है, जिससे लस्सी तैयार होती है; पानी, बर्फ और चीनी पर बढ़ती और पुष्ट होती है और मन्थन क्रिया से उत्पन्न झाग यह सूचित करते हैं कि अब लस्सी तैयार हो गयी। इस तरह दही विभाव है जिसका लस्सी से उत्पादक-उत्पाद्य सम्बन्ध है, पानी, बर्फ, चीनी संचारि भाव हैं जिसका लस्सी से पोष्य-पोषक सम्बन्ध है तथा झाग अनुभाव जो लस्सी रूपी रस को व्यक्त या सूचित करते हैं। यद्यपि विद्वानों ने भट्टलोल्लट के मत को 'उत्पत्तिवाद' का नाम दिया है, किन्तु यह भ्रामक है, क्योंकि 'निष्पत्ति' के अन्तर्गत लोल्लट ने केवल उत्पत्ति को ही नहीं, पुष्टि और अभिव्यक्ति को भी स्थान दिया है।